डॉ.अम्बेडकर और मुस्लिम राजनीति

डॉ. शंकर शरण

चिन्तन-सृजन
वर्ष-9 - अंक-4

डॉ. अंबेदकर और मुस्लिम राजनीति

शंकर शरण*

आज हमारे देश के सामने प्रस्तावित 'सांप्रदायिक और लक्षित हिंसा निरोधक (न्याय और क्षतिपूर्ति मिलने) विधेयक, 2011' के प्रसंग म. बाबासाहेब डॉ. भीमराव अंबेदकर की पुस्तक *थॉट्स ऑन पाकिस्तान* का पुनः अध्ययन करना जरूरी हो गया है। सन् 1940 म. छपी यह पुस्तक एक ऐतिहासिक कृति है। इसम. तब के भारत म. विगत पचास वर्ष की मुस्लिम राजनीति का विस्तृत, प्रामाणिक लेखा-जोखा है। साथ ही, हिन्दू-मुस्लिम संबंधों तथा इस्लामी दर्शन व राजनीति पर अत्यंत गंभीर चिन्तन भी मौजूद है। जिन्ह. भी भारत म. सांप्रदायिक हिंसा की समस्या को ठीक से समझने की आवश्यकता महसूस हो, उन्ह. यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

चूँकि डॉ. अंबेदकर हिन्दू धर्म और समाज के कटु आलोचक थे, इसलिए उनके विचारों और मूल्यांकन पर किसी सामुदायिक पक्षपात का आरोप लगाना भी सम्भव नहीं। न वह कभी लगाया गया। उलटे, जिन्ना जैसे मुस्लिम नेता ने भी उसे पठनीय बताया था। सन् 1944 म. जिन्ना ने गाँधीजी को भी इसे पढ़ने की अनुशंसा की थी। वैसे भी, डॉ. अंबेदकर बड़े विद्वान और विश्व की व्यापक जानकारी रखने वाले गंभीर अवलोकनकर्त्ता थे। अस्तु, भारत म. हिन्दू-मुस्लिम संबंधों और इस्लामी राजनीति की विशेषताओं पर डॉ. अंबेदकर की यह पुस्तक स्थायी शिक्षात्मक मूल्य रखती है। यहाँ हम इसके आकलनों को विस्तार से इसीलिए ले रहे हैं, क्योंकि यह उसी विषय पर क.द्रित थी, जिसकी आज उक्त प्रस्तावित कानून के सन्दर्भ म. चर्चा हो रही है। डॉ. अंबेदकर ने पुस्तक के द्वितीय संस्करण (1945) की प्रस्तावना म. लिखा था, "यह भारतीय इतिहास और भारतीय राजनीति के सांप्रदायिक पहलुओं की एक विश्लेषणात्मक प्रस्तुति है।"

इस पुस्तक की आवश्यकता को भारी महत्त्व देते हुए डॉ. अंबेदकर ने इसे लिखने के लिए कई जरूरी काम स्थगित कर दिए थे। वस्तुतः यह मूलतः पुस्तक

* डॉ. शंकर शरण, IV/44, एन.सी.ई.आर.टी. आवास, श्री अरविंदो मार्ग, नई दिल्ली-110016

नहीं, बल्कि मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान प्रस्ताव पास करने के बाद इस विषय पर इंडिप.ड.ट लेबर पार्टी (आई.एल.पी.) का प्रतिवेदन था जिसे डॉ. अंबेदकर ने तैयार किया तथा आई.एल.पी. की एक विशेष समिति के पुनरीक्षण के बाद इसे प्रकाशित किया गया। इसका उद्देश्य, डॉ. अंबेदकर के ही शब्दों म., "पाकिस्तान के बारे म. अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को अपने निष्कर्ष पर पहुँचने म. सहायता करना है।" (बाबा साहेब डॉ. अंबेदकर, 'संपूर्ण वाङमय', खंड 15, भारत सरकार, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मन्त्रालय, जनवरी 2000, पृ. xiii-xiv आगे इस लेख म. सभी उद्धरण इसी खंड से लिए गए हैं। अतः इस लेख के सभी उद्धरणों के बाद कोष्ठकों म. केवल पृष्ठ संख्या रहेगी)। यह कहने म. कोई अतिशयोक्ति नहीं कि आज बहत्तर वर्ष बाद भी भारत म. मुस्लिम राजनीति को समझने म. यह पुस्तक बहुत सहायक है।

ग्रावामिन पॉलिटिक

अपनी इस पुस्तक के आठव. अध्याय के अंत म. हिन्दुओं को समझाते हुए डॉ. अंबेदकर कहते हैं कि उन्ह. इस्लामी राजनीति की विशिष्टताओं को ध्यान म. रखना चाहिए। उनके अपने ही शब्दों म., "... अपना दृष्टिकोण निर्धारित करते समय वे कुछ महत्त्वपूर्ण बातों को अपने ध्यान म. रख.। विशेष रूप से उन्ह. इस बात को ध्यान म. रखना चाहिए कि माच पॉलिटिक (Macht Politic) और ग्रावामिन पॉलिटिक (Gravamin Politic) म. अंतर होता है, *कम्युनिटास कम्युनिटेटम* और *नेशन ऑफ नेशंस* म. अंतर होता है। निर्बलों की आशंकाएँ दूर करने वाले रक्षोपायों और ताकतवर लोगों की आकांक्षाएँ पूरी करने के कपटपूर्ण उपायों म. अंतर होता है। रक्षोपायों की व्यवस्था करने और देश को सौंप देने के बीच अंतर होता है।" (पृ. 196)

उक्त अंश म. माच पॉलिटिक और ग्रावामिन पॉलिटिक का अर्थ डॉ. अंबेदकर ने फुट नोट म. संक्षेप म. इस प्रकार दिया है। 'माच पॉलिटिक का अर्थ है सत्ता की राजनीति' तथा 'ग्रावामिन पॉलिटिक का तात्पर्य है कि मुख्य रणनीति यह हो कि शिकायत. पैदा करके सत्ता हथियाई जाए।' ('Gravamin Politic means in which the main strategy is to gain power by manufacturing grievances'.) अर्थात, डॉ. अंबेदकर के अनुसार भारत म. मुस्लिम राजनीति ग्रावामिन पॉलिटिक है, जो निरंतर शिकायत. करते हुए कपटपूर्वक एक दबाव बनाती है। जो दिखावे के लिए निर्बल की आशंका का रूप बनाती है, किन्तु वास्तव म. वह एक ताकतवर, संगठित समुदाय की राजनीतिक रणनीति है। हिन्दुओं को यह ठीक से समझकर चलना चाहिए। यह डॉ. अंबेदकर की शिक्षा है।

दसव. अध्याय म. एक स्थल पर मुस्लिम राजनीति की विशेषता को रेखांकित करते हुए डॉ. अंबेदकर लिखते हैं, "मुस्लिम राजनीति अनिवार्यतः मुल्लाओं की राजनीति है और वह मात्र एक अंतर को ही मान्यता देती हैहिन्दू और मुसलमानों

के बीच मौजूद अंतर। जीवन के किसी भी धर्मनिरपेक्ष तत्त्व का मुस्लिम समुदाय की राजनीति म. कोई स्थान नहीं है और वे मुस्लिम राजनीतिक जमात के केवल एक ही निर्देशक सिद्धांत के सामने वे नतमस्तक होते हैं, जिसे मजहब कहा जाता है।" (पृ. 226)। इसी अध्याय म. आगे डॉ. अंबेदकर पुनः कहते हैं कि यह राजनीति हिन्दुओं के साथ बराबरी नहीं, बल्कि उनके ऊपर वरिष्ठता हासिल करने के लक्ष्य से प्रेरित है। इसके लिए मुस्लिम नेताओं ने मुस्लिम स्त्रियों के कुछ अधिकारों की भी बलि चढ़ा दी, जो स्त्रियों को सन् 1939 तक मिली हुई थी।

प्रसंगवश, यह तथ्य अन्य पहलू से भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे दिखता है कि समकालीन भारत म. शरीयत की सर्वोच्चता या अनुल्लंघनीयता का मुस्लिम दावा हाल की बात है। वस्तुतः यह भी ग्रावामिन पॉलिटिक का ही उदाहरण है। (सन् 1995 म. सरला मुद्गल मामले म. भारत के सुप्रीम कोर्ट ने भी कहा था कि यहाँ "मुस्लिम पर्सनल लॉ का जन्म मजहब से नहीं, बल्कि लॉर्ड वारेन हेस्टिंग्स के बनाए कानून से हुआ था।" सन् 1791 म. वह कानून आया जिसके अनुसार शादी, तलाक तथा संपत्ति उत्तराधिकार मामलों म. मुसलमान और हिंदू अपने-अपने धार्मिक चलन से अलग-अलग चल सकते थे। लेकिन 1832 म. उसी ब्रिटिश सरकार ने आपराधिक मामलों म. मुस्लिम लॉ को खत्म कर समान कानून लागू कर दिया।) डॉ. अंबेदकर लिखते हैं कि 1939 तक भारत म. कानून यह था कि मुस्लिम कानून के अंतर्गत विवाहित पुरुष या महिला के स्वधर्म-त्याग से विवाह भंग हो जाता था। यानी कोई विवाहित मुस्लिम महिला इस्लाम छोड़ देती थी, तो उसका विवाह स्वतः भंग हो जाता था और "वह अपने नए धर्म के किसी भी पुरुष से विवाह करने के लिए स्वतन्त्र हो जाती थी। साठ वर्ष तक भारत की सभी अदालतों म. इस कानून का दृढ़तापूर्वक पालन किया गया।" (पृ. 233) मगर 1939 के मुस्लिम विवाह अधिनियम द्वारा इस कानून को रद्द कर दिया गया। इस कानूनी परिवर्तन के पीछे संपूर्ण मंशा हिन्दुओं की तुलना म. मुस्लिम संख्यात्मक अनुपात की ताकत घटने न देने की थी। केवल इसी उद्देश्य के लिए महिलाओं के अधिकार की बलि चढ़ा दी गई। (पृ. 239)

अंतहीन माँग.

दरअसल, डॉ. अंबेदकर का वह सुप्रसिद्ध कथन कि "मुसलमानों की राजनीतिक माँग. हनुमानजी की पूँछ की तरह बढ़ती जाती हैं" (पृ. 245) ग्रावामिन पॉलिटिक के रूप म. ही ठीक से समझा जा सकता है। अध्याय 11 म. डॉ. अंबेदकर ने इसे विस्तारपूर्वक उदाहरणों के साथ दिखाया है कि हिन्दू नेताओं द्वारा मुस्लिम माँगों को मानते जाने से भी मुस्लिम नेता कभी संतुष्ट नहीं होते थे और फौरन नई माँग. पेश कर देते थे। उनम. 'फालतू और असम्भव' माँगें तक होती थीं। यह प्रक्रिया मुसलमानों के लिए एक

अलग देश, पाकिस्तान तक बनवा लेने के बाद भी बंद नहीं हुई है! जो मुस्लिम राजनीति की अप्रतिम सफलता और हिन्दू मूढ़ता, दोनों का नायाब उदाहरण है।

बहरहाल, अपनी पुस्तक के इस अध्याय म. डॉ. अंबेदकर सन् 1892 से ही मुस्लिम माँगों का आकलन करते हुए सिलसिलेवार बढ़ते हैं। 1938 म. जिन्ना की चौदह माँगों की विस्तृत सूची का पूरा उल्लेख करके वह कहते हैं कि इसके बाद भी "यह पता नहीं चलता कि मुसलमान अपनी माँगों की इतिश्री कहाँ करने जा रहे हैं।" (पृ. 260-61)। क्योंकि उन चौदह माँगों के बाद कुछ ही महीनों म. एक और बड़ी, महत्त्वपूर्ण माँग रखी गई कि हर जगह मुसलमानों को 50 प्रतिशत स्थान उपलब्ध कराया जाए। यानी, आबादी के अनुपात से भी बहुत अधिक प्रतिनिधित्व! इसका क्या तर्क था? मुसलमानों के "राजनीतिक महत्त्व के आधार पर"! यदि आप यह या वह माँग नहीं मानते तो मुसलमानों के साथ अन्याय कर रहे हैं, उन्ह. अपना गुलाम बनाना चाहते हैं, आदि। यह ग्रावामिन पॉलिटिक का, यानी खुली दादागिरी करते हुए गढ़ी गई शिकायत. ठोकने का एक उत्कृष्ट उदाहरण था। बल्कि यह सीधे-सीधे नस्ली श्रेष्ठता और मजहबी अंहकार की राजनीति थी, जिसम. दूसरों को खुलेआम नीचा समझा जाता था। दुःख की बात है कि हिन्दू नेताओं ने इस प्रवृत्ति को स्वीकार कर हिन्दुओं की और पूरे देश की अपरिमित हानि की।

हिटलरी भाषा और मनोवृत्ति

इस पर डॉ. अंबेदकर ने अत्यंत गंभीरतापूर्वक लिखा है, "मुसलमान अब हिटलर की भाषा का प्रयोग कर रहे हैं तथा जर्मनी म. जिस महत्त्व की माँग हिटलर ने की थी, वे उस महत्त्व की आकांक्षा यहाँ कर रहे हैं। 50 प्रतिशत भागीदारी की उनकी माँग, 'ड्यूशलैंड उबेर ऐलेस' (जर्मनी सबसे ऊपर) और हिटलरी नाजियों के 'लैब.सराउम' (नाजी जर्मन अपनी जरूरत के लिए जितनी अतिरिक्त जमीन चाहते थे वह इलाका) की माँग के सदृश्य ही है।" (पृ. 262)।

रोचक बात यह है कि यह डॉ. अंबेदकर का आरोप मात्र नहीं है, स्वयं जिन्ना ने अपने सार्वजनिक भाषणों म. हिटलरी संज्ञाओं, मुहावरों का अपने लिए गर्वपूर्वक उल्लेख किया। इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए डॉ. अंबेदकर लिखते हैं, "अनुचित लाभ उठाने की इस प्रवृत्ति का दूसरा प्रमाण मुसलमानों द्वारा गोहत्या के अधिकार और मस्जिदों के पास बाजे-गाजे की मनाही की माँग से मिलता है। धार्मिक उद्देश्य से गो-बलि के लिए मुस्लिम कानूनों म. कोई बल नहीं दिया गया है और जब वह मक्का और मदीना की तीर्थयात्रा पर जाता है, गो-बलि नहीं करता है। परन्तु भारत म. दूसरे किसी पशु की बलि देकर वे संतुष्ट नहीं होते हैं। सभी मुस्लिम देशों म. किसी मस्जिद के सामने से गाजे-बाजे के साथ बिना आपत्ति के गुजर सकते हैं। यहाँ तक कि अफगानिस्तान म. भी जहाँ धर्म-निरपेक्षीकरण नहीं किया गया है, मस्जिदों के पास

गाजे-बाजे पर आपत्ति नहीं होती है। परन्तु भारत म. मुसलमान इस पर आपत्ति करते हैं, मात्र इसलिए कि हिन्दू इसे उचित मानते हैं।" (पृ. 267)

इसके बाद डॉ. अंबेदकर अपनी टिप्पणी देते हुए उल्लेख करते हैं कि श्री जिन्ना और सर अब्दुल्ला हारुन, दोनों ने मुस्लिम लीग के कराची अधिवेशन म. नाजी जर्मनों की तरह "भारतीय मुसलमानों की तुलना 'सुडेटेन' से किया जो वही कर सकता था जैसा कि सुडेटन जर्मनों ने चेकोस्लोवाकिया के विरुद्ध किया था।" (पृ. 267) इस समाकलन के साथ डॉ. अंबेदकर की पूरी टिप्पणी विचारणीय है, "तीसरी बात, मुसलमानों द्वारा राजनीति म. अपराधियों के तौर-तरीके अपनाया जाना है। दंगे इस बात के पर्याप्त संकेत हैं कि गुंडागर्दी उनकी राजनीति का एक स्थापित तरीका हो गया है। चेकों के विरुद्ध सुडेटेन जर्मनों ने जिन तौर-तरीकों को अपनाया था वे उसका जान-बूझकर तथा समझते हुए अनुकरण करते प्रतीत हो रहे हैं।" (पृ. 267)

यदि किन्हीं पाठकों को प्रतीत हो कि डॉ. अंबेदकर की इन टिप्पणियों से जिन्ना और मुस्लिम नेताओं को बुरा लगा होगा, या आपत्ति होगी, उन्ह. यह रोचक तथ्य जान लेना चाहिए कि स्वयं जिन्ना ने गाँधी जी को डॉ. अंबेदकर की यह पुस्तक पढ़ने की अनुशंसा की थी। जिन्ना को डॉ. अंबेदकर की इस पुस्तक के कथ्य, आकलन और टिप्पणियों से कोई आपत्ति न थी, बल्कि सहमति थी! यह इस बात का अतिरिक्त प्रमाण है कि मुस्लिम राजनीति कितनी निश्चिंतता से अपनी आक्रामकता, अपनी दबंगई, अपने हिटलरीपन को अपनी सबसे बड़ी पूँजी मानती थी। हमारे लिए प्रश्न यह बनता है : क्या आज स्थिति कुछ बदल गई है?

मुस्लिम माँगों की अंतहीनता का आकलन करते हुए डॉ. अंबेदकर की कुछ और टिप्पणियाँ ध्यातव्य हैं। सुडेटेन जर्मनों वाली मनोवृत्ति से भारतीय मुसलमानों की तुलना करते हुए वे आगे लिखते हैं, "उर्दू को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने की उनकी माँग भी उतनी ही विवेकहीन है। उर्दू संपूर्ण भारत म. नहीं बोली जाती है। यही नहीं, सभी मुसलमानों की भी यह भाषा नहीं है। 6.8 करोड़ मुसलमानों (ये आँकड़े 1921 की जनगणना से संबंधित हैं) म. मात्र 2.8 करोड़ ही उर्दू बोलते हैं। उर्दू को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रस्ताव का अर्थ, खासकर मात्र 2.8 करोड़ मुसलमानों की भाषा को 4 करोड़ अन्य मुसलमानों और 32.2 करोड़ अन्य हिन्दुस्तानियों पर थोप देने जैसा ही होगा। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि जब भी संवैधानिक सुधार का कोई प्रस्ताव सामने आता है, मुसलमान अपनी एक या अनेक राजनीतिक माँगें रख देते हैं।" (पृ. 262)

इस पर ब्रिटिश सरकार की नीति का उल्लेख करते हुए डॉ. अंबेदकर लिखते हैं कि मुसलमानों की माँगें जितनी ही बढ़ती जाती हैं, प्रतीत होता है कि ब्रिटिश सरकार उतनी ही उदार हो जाती है। "किसी भी तरह, विगत के अनुभव से यही प्रतीत होता है कि ब्रिटिशों का रवैया मुस्लिमों को जितना वे स्वयं माँगते हैं, उससे अधिक

देने का रहा है। ऐसे दो दृष्टांत दिए जा सकते हैं...” (पृ. 262)। यहाँ ठहर कर वर्तमान स्थिति से तुलना भी की जा सकती है। क्या स्वतन्त्र भारत म. कांग्रेस नेताओं ने ठीक यही नीति नहीं अपनाई है? जम्मू-कश्मीर म. धारा 370 का अयाचित उपहार देने, हज सब्सिडी का कानून बनाने से लेकर अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की ‘शाखाएँ’ खोलने तक कई विशेषाधिकार, विशिष्ट सुविधाएँ देने का कार्य बिना किसी मुस्लिम माँग के किया गया! और कौन कह सकता है कि यह ठीक उसी उद्देश्य से नहीं किया गया जो ब्रिटिश सरकार का था? यानी, भारत के स्वाधीनता आंदोलन को कमजोर करने के लिए मुस्लिमों को विशिष्ट सुविधाएँ देते हुए हिन्दुओं से ऊपर और अलग रखते हुए अपना शासन सुरक्षित रखने का उद्देश्य। पिछले कई दशकों से भारत के सेक्यूलरपंथी शासकों की नीति यही तो रही है कि राष्ट्रवादी भावनाओं की हिन्दू जनता की हेठी करते हुए मुस्लिम समुदाय को विशिष्ट सुविधाएँ देना, ताकि उनके संगठित वोट के बल पर उनका राज-पाट चलता रहे। क्या यह प्रस्तावित ‘समूह लक्षित हिंसा’ रोकने के नाम पर उलटे किस्म का कानून उसी प्रवृत्ति की सबसे अन्यायपूर्ण और सबसे घातक अभिव्यक्ति नहीं है?

बराबरी नहीं, वरिष्ठता की माँग

मुस्लिम राजनीति किस प्रकार सदैव वरिष्ठता, श्रेष्ठता के अहंकार से चलती है, किसी बराबरी की चाह से नहीं, इसके अनगिनत उदाहरण आए दिन मिलते हैं। यदि कोई उसे न माने, तो ‘मुसलमानों की उपेक्षा करने’, ‘धोखा देने’ जैसे आरोप लगाए जाते हैं। इसका सबसे अधिक अनुभव स्वतन्त्र भारत म. कांग्रेस पार्टी को ही हुआ है। उसने मुस्लिम नेताओं को जितना ही महत्त्व दिया, उन्ह. सुविधाएँ दीं, उनकी अनर्गल और असंवैधानिक, अन्यायपूर्ण माँग. मानीं, उसके बदले उन्ह. कभी ‘थैंक्यू’ शायद ही सुनना नसीब हुआ। सदैव, ठगने और ठगे जाने के ही आरोप मिले हैं। सांप्रदायिक हिंसा रोकने के नाम पर बने इस प्रस्तावित कानून पर भी वरिष्ठता चाहने वाली मुस्लिम माँगों का प्रभाव है।

जमाते-उलेमा ने दो वर्ष पहले आंदोलन की धमकी देकर प्रधानमन्त्री से माँग की थी कि सांप्रदायिक हिंसा रोकने से विफलता पर जिला प्रशासन को उत्तरदायी ठहराया जाए। (द पायोनियर, नई दिल्ली, 30 अप्रैल, 2010)। इस माँग का व्यवहार म. अर्थ होगा कि गोधरा हो तो हो, गुजरात दंगा न हो! कोई मुस्लिम भीड़ रेलवे ट्रेन रोककर आग लगाकर हिंदू तीर्थयात्रियों को जला कर मार डाले, तब भी दंगे न हों। सिद्धांततः इस बात म. कोई दोष नहीं दिखता। दंगे नहीं होने चाहिए, यह ठीक है। मगर भारत के विगत सौ साल के इतिहास को देखते हुए व्यवहारतः यह सामुदायिक पक्षपात साबित होगा। क्योंकि प्रायः दंगे गोधरा जैसी घटनाओं की प्रतिक्रियास्वरूप ही होते रहे हैं। दंगों को झेलने वाले सभी पुलिस थाने और अस्पताल इस सत्य को जानते

हैं। अनुभवी डॉक्टरों के शब्दों म., ‘पहले हिन्दू लाश. आती हैं’। कि हिंसा की शुरुआत प्रायः मुस्लिमों द्वारा होती है। (जिसे 1970 म. भारत सरकार के गृह मन्त्रालय की उस रिपोर्ट म. भी देखा जा सकता है, जिसम. पाया गया था कि विगत 23 दंगों म. 22 दंगे मुस्लिमों द्वारा शुरू किए गए थे। वह रिपोर्ट राष्ट्रीय एकता परिषद् के समक्ष भी गई थी और 14 मई, 1970 को लोक सभा म. उसकी चर्चा भी हुई थी)। मगर यदि किसी हिंसक घटना के बाद प्रतिक्रियात्मक हिंसा न हुई, तो उसे दंगा नहीं कहा जाता। वह महज एक कांड या वारदात है। कभी ट्रेन म. बम विस्फोट, कभी स्टेशन पर, कभी बाजार म., कभी मंदिर में, यहाँ तक कि संसद पर, आदि यह सब ‘कांड’ हैं। मगर जब प्रतिक्रियास्वरूप हिंसा हो, तब दंगा कहलाता है।

स्वयं गोधरा का हिंदू-दहन इसका प्रमाण है। 27 फरवरी 2002 को गोधरा म. साबरमती एक्सप्रेस को रोककर 59 हिन्दुओं को जिंदा जला दिया गया। 28 फरवरी और 1 मार्च, 2002 के सारे बड़े अखबार पलट कर देख ल.। उनम. कहीं ‘सांप्रदायिक दंगा’ या ‘सांप्रदायिक हिंसा’ जैसा उल्लेख या उसकी बड़े लोगों द्वारा भर्त्सना भी शायद ही मिले। अर्थात्, यदि उस कांड के बाद प्रतिक्रियात्मक हिंसा न हुई होती, तो माना जाता कि दंगा नहीं हुआ। प्रस्तावित कानून वही स्थिति सुनिश्चित करने के लिए जिला प्रशासन को उत्तरदायी बनाना चाहता है कि चाहे कुछ हो जाए, वह ‘प्रतिक्रिया’ न होने दे। यानी ‘क्रिया’ हो भी, तो ‘प्रतिक्रिया’ न हो। इसलिए ‘कांड’ के लिए जिला प्रशासन जिम्मेदार हो, यह नहीं, बल्कि ‘दंगा’ के लिए होगा! वस्तुतः पहल यह होनी चाहिए कि ‘क्रिया’ ही न हो।

केवल एक समुदाय की सुरक्षा

अतः ‘सांप्रदायिक हिंसा रोकने म. विफलता के लिए जिला-प्रशासन को जिम्मेदार ठहराने’ की जमाते-उलेमा की माँग, जिसे प्रस्तावित कानून म. महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है, एक प्रकार से संगठित मजहबी उग्रवादियों, कट्टरपंथियों आदि को एक प्रकार का सामुदायिक बीमा मिलने जैसा है कि इस्लामी आतंकवादियों, जिहादियों की ‘लक्षित हिंसा’ (आखिर अमरनाथ यात्रियों, अक्षरधाम, रघुनाथ मंदिर, संकट मोचन, अयोध्या आदि मंदिरों पर जिहादियों के हमलों का क्या अर्थ है?) के बाद दूसरे समुदाय की वैसी ही लक्षित प्रतिक्रिया को पहले से रोकने का उपाय कर दिया जाए! जमाते-उलेमा की माँग और प्रस्तावित कानून म. ऐसी धारा की यह व्याख्या अटपटी लग सकती है, किन्तु विविध मुस्लिम प्रवक्ताओं, संगठनों द्वारा जिहादियों का हर हाल म. बचाव करने, यहाँ तक कि अदालत द्वारा सजा सुनाए गए आतंकवादी को भी फाँसी न देने की माँग करने, न मानने पर ‘सजा सुनाने वाले जजों की हत्या हो सकती है’ जैसी धमकियाँ देने, तथा ओसामा बिन लादेन तथा अल कायदा जैसे कुख्यात आतंकवादी संगठनों के प्रति भी खुली सहानुभूति दिखाने, आदि गंभीर वास्तविकताओं

को देखते हुए यह व्याख्या अटपटी नहीं लगेगी। क्योंकि यदि जमाते-उलेमा वास्तव म. हर प्रकार की सांप्रदायिक हिंसा रोकना चाहते हैं तो उन्ह. इस्लामी आतंकवादियों, जिहादियों के विरुद्ध भी वैसी ही कठोर कार्रवाई करने की माँग करनी चाहिए थी। वैसे लोगों को पनाह देने वाले मुस्लिमों के प्रति भी खुल कर वितृष्णा दिखानी चाहिए थी। लेकिन उलेमा तो प्रायः इसका उलटा करते हैं। बिल्डिंगें और पुल, हवाई जहाज और मेट्रो ट्रेन आदि उड़ाकर हजारों निर्दोष लोगों की जान. लेने वाले आतंकवादियों के लिए भी उनकी ओर से सदैव बचाव के ही बयान आते हैं। तब यह आशंका गलत कैसे है कि 'दंगे' रोकने की उनकी चिन्ता केवल मुस्लिम हिंसा की कार्रवाइयों पर सामाजिक प्रतिक्रिया रोकने की सुचिंतित रणनीति है? कि क्रिया चलती रहे, प्रतिक्रिया न हो!

जमाते-उलेमा की उसी माँग म. 'आबादी के अनुपात म.' सभी जगह मुस्लिमों को प्रतिनिधित्व देने की माँग भी की गई थी। ऊपर डॉ. अंबेदकर के अवलोकन के आलोक म. यह सरलता से समझा जा सकता है कि यह बस शुरुआत है जिसका अंत आबादी के अनुपात म. दुगुना ले लेने के बाद भी नहीं होने वाला। 1938-39 म. जिन्ना ने यह दिखाया था कि संपूर्ण भारतीय आबादी म. मुसलमान 20% होते हुए भी, उन्होंने हर जगह 50% स्थान की माँग की। यही 1909 म. भी हुआ था, जब विधान परिषदों म. सुधार की चर्चा थी, तब मुस्लिम प्रतिनिधिमंडल ने वायसराय से यह माँग रखी, "इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल म. मुसलमान प्रतिनिधियों की संख्या उनकी जनसंख्या पर नहीं आधारित होनी चाहिए और किसी भी स्थिति म. मुसलमानों को निष्प्रभावी अल्पमत म. नहीं रखना चाहिए।" (पृ. 247)। अर्थात, मुस्लिम राजनीति सत्ता पर एकाधिकार से नीचे किसी हाल म. संतुष्ट होने वाली नहीं है। पाकिस्तान बनवा लेने के बाद भी शेष भारत म. किसी न किसी प्रकार मुस्लिम वर्चस्व हो, उसकी संपूर्ण राजनीति इसी से प्रेरित है। कम से कम स्वतन्त्रतापूर्व भारत का संपूर्ण घटनाक्रम यही प्रमाण देता है। डॉ. अंबेदकर ने इसी को ग्रावामिन पॉलिटिक कह कर हिन्दुओं को चेताने का प्रयत्न किया था, कि वे झूठी शिकायतों की राजनीति के कपट म. फँस कर ताकतवर शिकायतबाजों को देश ही न सौंप द.। दुर्भाग्यवश वही हुआ।

मुस्लिम एकता के खतरनाक रूप

यह भी ऐसा बिन्दु है, जो सामुदायिक बल की तुलनात्मक स्थिति का वास्तविक मूल्यांकन करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। इसे हिन्दू और मुस्लिम दोनों भारत म. पिछले सौ वर्ष से जानते हैं, मगर हिन्दू बुद्धिजीवी और नीति-निर्माता इस सत्य को सदैव झुठलाते हैं। 'आतंकवादियों का कोई मजहब नहीं होता' जैसी थोथी दलील. इसका मात्र एक उदाहरण हैं। यदि आतंकवादियों का मजहब नहीं होता, तो संसद पर आतंकी हमला करने वाले मुहम्मद अफजल को सजा से बचाने के लिए विविध मुस्लिम नेता क्यों लगे रहे हैं? मारे गए आतंकवादियों को पूरे मजहबी सम्मान से दफनाने की

माँग क्यों की जाती है? डॉ. अंबेदकर ने इस बिन्दु को सैद्धांतिक रूप से गंभीरतापूर्वक उठाया था, कि मुस्लिम नेता भले मुसलमान और अपराधी मुसलमान म. कोई भेद नहीं करते कि यह उनकी विशिष्ट शक्ति का एक स्रोत है। इसी सन्दर्भ म. डॉ. अंबेदकर ने मौलाना मुहम्मद अली के ऐतिहासिक वक्तव्य का उल्लेख किया है।

मौलाना मुहम्मद अली खलीफत आंदोलन के प्रसिद्ध नेता और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके थे। वे गाँधी जी के परम मित्र भी थे, जिनका बखान करते गाँधी जी अघाते न थे। उन्होंने मार्च, 1924 म., अलीगढ़ और अजमेर के अपने सार्वजनिक भाषणों म. यह कहा, "श्री गाँधी का चरित्र कितना भी पवित्र क्यों न हो, धार्मिक दृष्टिकोण से वह मुझे किसी भी मुसलमान से, चाहे वह मुसलमान चरित्रहीन ही हो, निकृष्ट ही लग.गे।" (पृ. 306) डॉ. अंबेदकर लिखते हैं कि, "इस वक्तव्य से हलचल और उत्तेजना फैल गई। अनेक लोगों को तो विश्वास ही नहीं हुआ कि श्री मुहम्मद अली, श्री गाँधी के प्रति, जो उन्ह. इतना आदर देते हैं, ऐसी कठोर और घृणास्पद भावना रख.गे। जब श्री मुहम्मद अली लखनऊ के अमीनाबाद पार्क की सभा म. बोल रहे थे, तब उनसे पूछा गया कि क्या उनके द्वारा दिया गया उक्त कथन सत्य है, तो उन्होंने बिना किसी झिझक या पश्चात्ताप के कहा : 'हाँ, अपने धर्म और मत के अनुसार, मैं एक व्यभिचारी और गिरे हुए मुसलमान को भी श्री गाँधी से श्रेष्ठ मानता हूँ।'"(पृ. 306)

इस प्रसंग को हर प्रकार के आतंकवादियों, अपराधियों, जिहादियों का बचाव करने म. मुस्लिम नेताओं की जिद, छल और ढिठाई के सन्दर्भ म. स्मरण रखना चाहिए। यह भी समझना चाहिए कि जब किसी भी पुलिस धर-पकड़ म. 'निर्दोष मुस्लिमों को सताने' के आरोप लगाए जाते हैं, तो यह वास्तव म. भोले हिन्दू बुद्धिजीवियों को लक्षित होता है कि वे भी शासन पर दबाव डाल. कि किसी मुसलमान को न पकड़ा जाए। क्योंकि वास्तव म. मुस्लिम समाज अपने निर्दोष और दोषी के बीच कोई खास भेद नहीं करता। उलटे गिरे से गिरे मुसलमान को भी सज्जन से सज्जन हिन्दुओं की तुलना म. अपना समझता है। मौलाना मुहम्मद अली ने उसी को सिद्धांततः व्यक्त किया था, जो व्यवहारतः पूरी दुनिया का अनुभव है। हिंदू समाज म. ठीक उलटा है। इनम. सदाचरण को ही धर्म समझा जाता है, अतः अपराधियों, व्यभिचारियों ही नहीं, संदिग्ध आरोपियों के प्रति भी सामान्य हिन्दू दुराव रखता है, चाहे वह अपना संबंधी ही क्यों न हो। इस विपरीत मनोवृत्ति को ठीक से जाने बिना सांप्रदायिक विषय पर दोनों समुदायों की वास्तविक भूमिका, तुलनात्मक शक्ति और निर्बलता का आकलन किया ही नहीं जा सकता।

वह केवल मौलाना के वक्तव्य की बात न थी। डॉ. अंबेदकर ने तत्कालीन समाज के अपने अवलोकन से मुसलमानों द्वारा लगातार वही व्यवहार सामान्यतः करने

की पुष्टि की है। अध्याय 7 म. कट्टर मुसलमानों द्वारा कई प्रतिष्ठित और सम्मानित हिन्दुओं की हत्याओं का विवरण दिया है। स्वामी श्रद्धानन्द, लाला नानकचंद, महाशय राजपाल आदि। जिनका अपराध यह था कि उन्होंने कुछ कहा या शुद्धि आंदोलन म. भाग लिया। फिर डॉ. अंबेदकर लिखते हैं, "यहाँ बहुत छोटी सूची दी गई है और इसे आसानी से और लंबा किया जा सकता है। परन्तु महत्त्व की बात यह है कि धर्मांध मुसलमानों द्वारा कितने प्रमुख हिन्दुओं की हत्या की गई। मूल प्रश्न है उन लोगों के दृष्टिकोण का जिन्होंने यह कत्ल किए। जहाँ कानून लागू किया जा सका, वहाँ हत्यारों को कानून के अनुसार सजा मिली; तथापि प्रमुख मुसलमानों ने इन अपराधियों की कभी निन्दा नहीं की। इसके विपरीत उन्ह. 'गाजी' बताकर उनका स्वागत किया गया और उनके क्षमादान के लिए आंदोलन शुरू कर दिए गए।" (पृ. 148)

केरल म. अगस्त, 1920 म. मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर की गई कुख्यात हिंसा के बाद भी कई मुस्लिम नेताओं ने वही किया था। उस संबंध म. डॉ. अंबेदकर लिखते हैं, "मालाबार म. मोपलाओं ने हिन्दुओं पर जो हृदय विदारक अत्याचार किए थे, वे अवर्णनीय हैं। समग्र दक्षिण भारत म. हरेक विचार के हिन्दुओं म. इनसे भय की एक भयानक लहर दौड़ गई थी और जब खिलाफत के कुछ पथभ्रष्ट नेताओं ने मोपलाओं को मजहब की खातिर की जाने वाली इस जंग के लिए बधाई दी, तब दक्षिण भारत के हिन्दू और भी उद्वेलित हो उठे।" (पृ. 148) उन अत्याचारों का कुछ विवरण डॉ. अंबेदकर ने पृ. 156 तथा पृ. 177 पर दिया भी है। वह केवल केरल की बात न थी। देश भर म. अन्य स्थानों पर भी वैसे कांड हुए।

हिन्दू नासमझी

मगर मोपला मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर किए गए उन भीषण अत्याचारों पर गाँधी जी की प्रतिक्रिया को नोट करते हुए डॉ. अंबेदकर जो लिखते हैं, उसे भी याद करना चाहिए। क्योंकि कमोबेश वही रुख आज के सेक्यूलरवादी हिन्दू बौद्धिकों का है, जो गोधरा जैसे कांड करने वालों और विविध जिहादियों के बचाव म. कुतर्क करते फिरते हैं। मोपलाओं के कारनामों पर गाँधी जी की प्रतिक्रिया पर डॉ. अंबेदकर ने लिखा, "किन्तु श्री गाँधी हिन्दू-मुस्लिम एकता की जरूरत के बारे म. इतने ज्यादा सनकी हो चुके थे कि उन्होंने मोपलाओं के कारनामों और बधाई देने वाले खिलाफतवादियों की हरकतों को अनदेखा कर दिया। मोपलाओं के बारे म. उन्होंने कहा कि मोपला भगवान से डरने वाले बहादुर लोग हैं और वे उस बात के लिए लड़ रहे हैं, जिसे धर्म समझते हैं; और उसी तरीके से लड़ रहे हैं जिसे धार्मिक समझते हैं।" (पृ. 148-49) इस तर्क से आज अल कायदा और तालिबान के सारे कारनामे उचित हैं, जिनकी भर्त्सना नहीं की जा सकेगी। वास्तव म., आज भी अनेक हिन्दू बुद्धिजीवी कुछ उसी भाषा म. जिहादियों का बचाव करते हैं।

भारत भर के हिन्दुओं की स्थिति इस बात से समझी जा सकती है कि केरल म. हिन्दुओं पर मुसलमानों द्वारा किए गए उन 'अवर्णनीय अत्याचारों' पर कांग्रेस की मीटिंग म. बिलकुल मामूली-सा, जिसम. उन अत्याचारों का उल्लेख तक नहीं किया गया, न कड़ी भाषा का, वैसा निंदा प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से पास नहीं हो सका। क्योंकि मुस्लिम नेताओं ने विरोध किया। हसरत मोहानी जैसे राष्ट्रवादी समझे जाने वाले मुस्लम नेता ने भी "इस आधार पर विरोध किया कि मोपला इलाका अब 'दारुल अमन' नहीं रहा, बल्कि 'दारुल हरब' बन चुका है,... इसलिए मोपलों ने यह ठीक ही किया कि हिन्दुओं के सामने कुरान या तलवार का विकल्प रखा। इसलिए यदि हिन्दू अपने आप को मौत से बचाने के लिए मुसलमान बन गए तो इसे स्वेच्छा से धर्म-परिवर्तन कहा जाएगा न कि जबरन धर्म-परिवर्तन।" (पृ. 151)

इन प्रतिक्रियाओं से मुस्लिम मानसिकता और उसकी व्यावहारिक परिणति का प्रामाणिक आकलन मिलता है। यह सब तब होता था जब भारत म. मुस्लिम 23 प्रतिशत थे और हिन्दू 71 प्रतिशत। भारत विभाजन के बाद पाकिस्तान और बांग्लादेश म. हिन्दू तेजी से समाप्त कर दिए गए। जबकि शेष बचे भारत म. मुस्लिम 10 प्रतिशत से बढ़कर 13 प्रतिशत पहुँच चुके हैं (स्वयं मुस्लिम नेता, इमाम बुखारी, रफीक जाकरिया आदि यहाँ मुस्लिम आबादी 16 प्रतिशत बताते हैं)। अतः हिन्दू और मुस्लिम समुदाय का वास्तविक सामाजिक बल, दोनों समुदाय की और उन के नेताओं की विपरीत मनोवृत्तियाँ और इन सबके तुलनात्मक परिणाम का यदि आकलन न किया जाए, तभी यह समझना कठिन होगा कि 'सांप्रदायिक हिंसा' रोकने के लिए जैसा एकतरफा कानून आज कांग्रेस की सर्वोच्च नेता की सलाहकार परिषद् ने प्रस्तावित किया है, जिसम. सदैव हिन्दुओं को उत्पीड़क और मुसलमानों को उत्पीड़ित मान कर चला गया है, जिसे दिग्विजय सिंह, लालू प्रसाद जैसे अनेक हिन्दू नेता निस्संकोच समर्थन दे रहे हैं, उससे कैसा अनर्थ होने वाला है!

मुस्लिम वैश्विक समुदाय हैं, अल्पसंख्यक नहीं

मुस्लिम समुदाय को भारत म. अल्पसंख्यक कहना हर तरीके से गलत है। आज संयुक्त राष्ट्र म. चलने वाली समझ से भी भारतीय मुस्लिम अल्पसंख्यक नहीं हैं। क्योंकि उसम. निरंतर उत्पीड़न, वैध अधिकारों म. कमी, आदि तत्त्व देखे जाते हैं। भारतीय मुस्लिमों को उलटे कुछ ऐसे विशेष अधिकार हासिल हैं, जो कई मुस्लिम देशों तक म. नहीं हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि स्वयं मुस्लिम नेता भी सचेत रूप से अपने को अल्पसंख्यक नहीं मानते। उलटे हिन्दुओं को ही 'दुनिया म. अल्पसंख्यक' मान कर धौंस देते हैं।

यह भावना पिछले सौ साल से बदस्तूर जारी है। यदि सार्वजनिक रूप से कुछ मुस्लिम नेता अपने को 'मायनॉरिटी' कह कर भाषणबाजी करते हैं, तो यह ग्रावामिन पॉलिटिक की ही एक अभिव्यक्ति है। मगर वास्तव म. वे स्वयं को दुनिया के दूसरे

सबसे बड़े समुदाय, जिसका 57 देशों म. शासन है, का अभिन्न अंग मानते हैं। जब-तब मुस्लिम नेता अरब देशों का हवाला देकर धमकियाँ भी देते हैं, कि 'तेल की आपूर्ति बंद करा द.गे', आदि। स्वतन्त्रता पूर्व भारत म. भी यह अंदाज था, जिसका डॉ. अंबेदकर ने आकलन किया है। उसम. सबसे उल्लेखनीय घटना है, जब सन् 1919 म. भारतीय मुस्लिमों ने अफगानिस्तान को भारत पर हमला करने का निमन्त्रण दिया। डॉ. अंबेदकर ने नोट किया है कि गाँधी जी ने उसम. भी 'हिन्दू-मुस्लिम एकता की सनक के कारण' मुस्लिमों का साथ देने की घोषणा की। (पृ. 145)

डॉ. सैफुद्दीन किचलू ने भी लाहौर की एक सभा म. मार्च 1925 म. घोषणा की कि, "यदि आप (हिन्दू) हमारे तंजीम आंदोलन के मार्ग म. बाधा डाल.गे और हम. हमारा अधिकार नहीं द.गे, तो हम अफगानिस्तान या अन्य मुस्लिम शक्ति के साथ हाथ मिलाएँगे और इस देश म. अपना शासन स्थापित कर.गे।" (पृ. 271)

मौलाना आजाद सुभानी ने जनवरी, 1939 म. बिना किसी यदि, किन्तु, के साफ ही कहा, "हमारी असली लड़ाई 22 करोड़ हिन्दुओं से है... यह भारत के 9 करोड़ मुसलमानों पर निर्भर करता है कि हिन्दुओं को शक्तिशाली बनाना है या कमजोर। अतः यह प्रत्येक धर्मपरायण मुस्लिम का कर्तव्य हो जाता है कि वह मुस्लिम लीग म. शामिल होकर युद्ध करे, जिससे कि हिन्दू यहाँ जम न सक. और अंग्रेजों के यहाँ से जाते ही मुसलमानों का शासन स्थापित हो।" (पृ. 271)

एनी बेस.ट का आकलन

भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन की एक महान नेतृ, कांग्रेस अध्यक्षा और प्रख्यात विदुषी एनी बेस.ट ने अपने लंबे अनुभव से भारत की सामुदायिक स्थिति पर जो कहा था, उसे भी गंभीरता से ध्यान म. रखना चाहिए। विशेषकर इसलिए क्योंकि वे ईसाई थीं और उन्ह. यूरोपीय, अरब स्थितियों की जानकारी भी थी, जिससे उनके तुलनात्मक अवलोकन म. और भी प्रमाणिकता आती है। भारत म. उनका सार्वजनिक जीवन अत्यंत सम्मानित रहा, जिन पर कभी किसी दुराग्रह का आरोप नहीं लगा।

एनी बेस.ट के अवलोकन को डॉ. अंबेदकर ने अपनी पुस्तक के 12व. अध्याय म. विस्तार से उद्धृत किया है, "खिलाफत जिहाद को बढ़ावा देने से भारत को पहुँची कई क्षतियों म. एक यह भी है कि मुसलमानों के दिल म. 'नास्तिकों' के प्रति नंगी और बेशर्मी की हद तक नफरत पैदा हुई जो कभी पहले होती थी। हम देखते हैं कि राजनीति म. तलवार का वही पुराना मुस्लिम धर्म लोगों की भावनाओं को उकसा रहा है, हम देख रहे हैं शताब्दियों पुरानी वही मुस्लिम धर्म की श्रेष्ठता का दंभ। ... हमने मुसलमान नेताओं को यह कहते सुना है कि यदि अफगान भारत पर आक्रमण करे तो वे अपने धर्म को मानने वाले अफगानों की सहायता कर.गे और उन हिंदुओं की हत्या

कर.गे जो दुश्मनों से अपनी मातृभूमि की रक्षा कर.गे। हम. यह सोचने पर विवश कर दिया गया है कि मुसलमानों की पहली वफादारी मुस्लिम देशों के प्रति है, हमारी मातृभूमि के प्रति नहीं। ... मुस्लिम नेताओं का यह दावा कि मुसलमानों को अपने विशेष पैगम्बर के कानूनों का पालन करना चाहिए और अपने राज्य के कानूनों, जिसम. वे रहते हैं, को दरकिनार कर देना चाहिए, राष्ट्र और नागरिक व्यवस्था के लिए घातक है। यह उन्ह. बुरा नागरिक साबित करता है, क्योंकि उनकी निष्ठा का क.द्र राष्ट्र से बाहर है।" (पृ. 273)

एनी बेस.ट यह भी लिखती हैं कि जो मुसलमान ऐसे विचारों का विरोध करते हैं और देश-भक्ति की पैरोकारी करते हैं, उनकी धर्म-विरोधी कह कर हत्या कर दी जाएगी। इसी विन्दु पर एनी बेस.ट वह सत्य भी नोट करती हैं, जो आज के भारत के लिए भी यथावत् सत्य है कि "मुस्लिम शासित देशों की तुलना म. मुसलमान ब्रिटिश शासन म. ज्यादा स्वतन्त्र हैं। स्वाधीन भारत के बारे म. सोचते समय हम. मुस्लिम शासन के आतंक के बारे म. भी विचार करना होगा।" (पृ. 274-75)

ऐसा क्यों है

डॉ. अंबेदकर ने सामुदायिक सन्दर्भ म. विस्तार से भारतीय परिदृश्य का आकलन करने, विभिन्न हिन्दू, मुस्लिम तथा अन्य नेताओं के विचार देने के साथ-साथ पूरी स्थिति पर अपना मंतव्य भी दिया है। वे लिखते हैं, "इस्लाम के सिद्धांतों म. एक सिद्धांत उल्लेखनीय है, जो कहता है कि उस देश म. जो मुस्लिम शासन म. नहीं है जब भी कभी मुसलमानों के कानून और उस देश के विद्यमान कानून के बीच विवाद उत्पन्न हो, तो इस्लामिक कानून को उस देश के कानून के ऊपर माना जाए।" (पृ. 294)

समस्या पैदा करने वाली दूसरी प्रवृत्ति डॉ. अंबेदकर के अनुसार इस प्रकार है, "मुस्लिम धर्म के सिद्धांतों के अनुसार, विश्व दो हिस्सों म. विभाजित हैदार-उल-इस्लाम तथा दार-उल-हर्ब। मुस्लिम शासित देश दार-उल-इस्लाम हैं। वह देश जिसम. मुसलमान सिर्फ रहते हैं, न कि शासन करते हैं, दार-उल-हर्ब है। मुस्लिम धार्मिक कानून का ऐसा होने के कारण भारत हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों की मातृभूमि नहीं हो सकती है। यह मुसलमानों की धरती हो सकती है किन्तु यह हिन्दुओं और मुसलमानों की धरती जिसम. दोनों समानता से रह. नहीं हो सकती।" (पृ 296) डॉ. अंबेदकर ने यह निष्कर्ष 1940 म. दिया था।

पिछले छह दशक के इतिहास ने पहले देश का विभाजन, फिर पाकिस्तान और बांग्लादेश म. हिन्दुओं के करुण भवितव्य ने इसे अक्षरशः प्रमाणित किया है कि भारत की धरती, पूरी या टुकड़े-टुकड़े तोड़ कर मुसलमानों की धरती तो होती गई, किन्तु उसम. हिन्दू नहीं रह सके। वही प्रक्रिया अन्यत्र इस पूरे इतिहास म. उत्पीड़क, हिंसक और क्रमशः, निरंतर जीतता हुआ कौन समुदाय है? यदि आज भारत म. समुदाय

आधारित कानून, समुदाय आधारित आरक्षण, आदि की तैयारी चल रही है तब समुदायों के संबंध म. यह पूरी वास्तविकता विचारणीय, चिन्तनीय क्यों नहीं बनती? इसके बदले उलटे एक संगठित, आक्रामक, विस्तारवादी, मजहबी मतवाद को ही 'हिंसा से पीड़ित' बताने जैसा कानून बनाने का प्रयत्न हो रहा है।

अपने निष्कर्ष की ओर बड़ते हुए आगे डॉ. अंबेदकर कहते हैं, "मुस्लिम धार्मिक कानून की दूसरी आज्ञा जिहाद है, जिसके तहत हर मुसलमान शासक का यह कर्तव्य हो जाता है कि इस्लाम के शासन का तब तक विस्तार करता रहे, जब तक सारी दुनिया मुसलमानों के नियंत्रण म. नहीं आ जाती। संसार के दो खेमों म. बाँटने की वजह से सारे देश या तो दार-उल-इस्लाम (इस्लाम का घर) या दार-उल-हर्ब (युद्ध का घर) की श्रेणी म. आते हैं। तकनीकी तौर पर हर मुस्लिम शासक का, जो इसके लिए सक्षम है, कर्तव्य है कि वह दार-उल-हर्ब को दार-उल-इस्लाम म. बदल दे; और भारत म. जिस तरह मुसलमानों के हिजरत का मार्ग अपनाने के उदाहरण हैं, वहाँ ऐसे भी उदाहरण हैं कि उन्होंने जिहाद की घोषणा करने से भी संकोच नहीं किया।" (पृ. 297) इस टिप्पणी को भी जल्द ही पाकिस्तान और बांग्लादेश म. हू-ब-हू चरितार्थ हुआ देखा जा सकता है, जहाँ मुस्लिम शासकों ने उसे दार-उल-इस्लाम म. बदल डाला।

दूसरी ओर, शेष बचे भारत म. जिहाद की घोषणाएँ ही नहीं, निरंतर आक्रामक कार्रवाइयाँ करते हुए अनगिनत इस्लामी संगठन सक्रिय रहे हैं। हिज्ब-उल-मुजाहिद्दीन, हरकत-उल-अंसार, लश्करे-तोएबा, सिमी, तबलीगी जमात, इंडियन मुजाहिद्दीन, आदि ने जो किया और कर रहे हैं, वह इस्लामी तर्कशास्त्र की दृष्टि से बिलकुल सुसंगत है। इसलिए उनके प्रति मुस्लिम समुदाय का समर्थन और सहानुभूति भी सुसंगत है। शायद, इसम. यह भी जोड़ द. कि इन सबके प्रति जैसा रुख मणिशंकर अय्यर, दिग्विजय सिंह और लालू प्रसाद जैसे अनेक बड़े हिन्दू नेताओं ने अपनाए रखा है, वह भी उतना ही सुसंगत है जितना गाँधी जी का वह वक्तव्य जो उन्होंने मोपला मुसलमानों के कारनामों पर दिया था।

मुस्लिम नेताओं की तमाम उपर्युक्त प्रवृत्तियों को समेकित करते हुए डॉ. अंबेदकर ने 'अखिल-इस्लामवाद' की संज्ञा दी। उसके प्रति हिन्दू नेताओं की भीरुता और नासमझी का भी उन्होंने जगह-जगह आकलन किया। माच पॉलिटिक और ग्रावामिन पॉलिटिक की विशेषताएँ बताते हुए उन्होंने उस नासमझी से उबरने का भी आग्रह किया। किन्तु विखंडित और अहंकार-ग्रस्त हिन्दू नेताओं ने कुछ नहीं समझा। उलटे गाँधी जी ने अपनी विचारधारात्मक जिद से लाखों हिन्दुओं को जिहादी मानसिकता के हवाले कर दिया और उन्ह. खत्म हो जाने तक की सीख दे डाली।

संपूर्ण परिदृश्य पर डॉ. अंबेदकर की निष्कर्षात्मक व्याख्या इस प्रकार है, "हिन्दू-मुस्लिम एकता की विफलता का मुख्य कारण इस अहसास का न होना है कि

हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जो भिन्नताएँ हैं, वे मात्र भिन्नताएँ ही नहीं हैं और उनके बीच मनमुटाव की भावना सिर्फ भौतिक कारणों से ही नहीं है। इस विभिन्नता का स्रोत ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक दुर्भावना है, और राजनीतिक दुर्भावना तो मात्र प्रतिबिंब है।" (पृ. 336) जैसा सर्वविदित है, डॉ. अंबेदकर हिन्दू धर्म के कटु आलोचक थे। यहाँ भी उन्होंने लिखा कि हिन्दू और इस्लाम धर्म म. अनेक दोष हैं।

बंद निकाय की मानसिकता

उदाहरण के लिए, डॉ. अंबेदकर के अनुसार हिन्दू धर्म लोगों को बाँटता है। लेकिन साथ ही उन्होंने इसका खंडन किया कि इस्लाम लोगों को जोड़ता है। वे दृढ़ता से लिखते हैं कि इस्लाम मुसलमानों और गैर-मुसलमानों को निर्ममता से बाँटता है। यही सारी समस्याओं की जड़ है। डॉ. अंबेदकर के अपने ही शब्दों म., "इस्लाम एक बंद निकाय ('क्लोज कॉरपोरेशन') की तरह है, जो मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के बीच जो भेद करता है, वह बिलकुल मूर्त्त और स्पष्ट है। इस्लाम का भ्रातृ-भाव मानवता का भ्रातृ-भाव नहीं है, मुसलमानों का मुसलमानों से ही भ्रातृत्व है। यह बंधुत्व है, परन्तु इसका लाभ अपने ही निकाय के लोगों तक सीमित है और जो इस निकाय से बाहर हैं, उनके लिए इसम. सिर्फ घृणा और शत्रुता ही है।" (पृ. 337)

यही वह बिन्दु है, जिसे भारत म. सारी सांप्रदायिक हिंसा, किसी समूह के विरुद्ध 'लक्षित हिंसा' का मूल माना जाना चाहिए। व्यवहार म. भी यह सर्वविदित है कि हिन्दुओं के साथ कभी पारसियों, यहूदियों, ईसाइयों की सांप्रदायिक हिंसा नहीं होती। दूसरी ओर, दुनिया भर म. मुस्लिमों की दूसरे सभी समुदायों के साथ हिंसा होती रहती है। इसलिए, सांप्रदायिक हिंसा का स्रोत और रोकने के उपाय पर सही दृष्टि अपनाने के लिए डॉ. अंबेदकर का अवलोकन अधिक उपयुक्त है।

डॉ. अंबेदकर के शब्दों म., "इस्लाम का दूसरा अवगुण यह है कि यह सामाजिक स्वशासन की एक पद्धति है और यह स्थानीय स्वशासन से मेल नहीं खाता, क्योंकि मुसलमानों की निष्ठा, जिस देश म. वे रहते हैं, उसके प्रति नहीं होती, बल्कि वह उस धार्मिक विश्वास पर निर्भर करती है, जिसका कि वे एक हिस्सा हैं।... दूसरे शब्दों म., इस्लाम एक सच्चे मुसलमान को भारत को अपनी मातृभूमि और हिन्दुओं को अपना निकट संबंधी मानने की इजाजत नहीं देता।" (पृ. 337)

इन अवलोकनों के साथ डॉ. अंबेदकर ने पाकिस्तान की माँग को इस्लामी विचारधारा की अनिवार्य परिणति समझा था। लगभग पाँच सौ पृष्ठों की उनकी यह पुस्तक सैद्धांतिक विश्लेषण, प्रमाणिक, सन्दर्भ-सहित विवरणों, वक्तव्यों और तर्कपूर्ण निष्कर्षों का बहुमूल्य संग्रह है। उन्होंने अपने को हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच

तटस्थ अवलोकनकर्ता के रूप म. रखा था। पर देश के भवितव्य के प्रति डॉ. अंबेदकर तटस्थ नहीं थे। उन्ह. भारत से प्रेम था। साथ ही, उन्ह. किसी भी प्रकार के अन्याय, अत्याचार, आडंबर तथा अनर्थ से उतनी ही घृणा थी। इसी आलोक म. उनकी सभी बातों पर गंभीरता-पूर्वक विचार करना चाहिए।

विशेषकर इसलिए, क्योंकि आज के भारत म. सांप्रदायिक हिंसा और विविध सामाजिक, राजनीतिक, कानूनी, शैक्षिक विषयों म. मुस्लिम शिकायतों की पूरी शृंखला अनिवार्यतः वही छवि प्रस्तुत करती है, जिस पर डॉ. अंबेदकर ने विचार किया था। जितने परिश्रम, सावधानी और बेबाकी से उन्होंने यह पुस्तक समय की माँग उठते ही प्रस्तुत की थी, वह हमारे विद्वानों और नेताओं के लिए एक उदाहरण है। आज हमारे विश्वविद्यालयी प्रोफेसर और बड़े राजनेता भी अतुलित सुविधाओं, सहायकों के साथ भी केवल संक्षिप्त बयानबाजी या लफ्फाजी से आगे नहीं जा पाते। हर कठिन प्रश्न पर बगल. झाँकने लगते हैं, या प्रश्न उठाने वाले को ही 'सांप्रदायिक', 'फासिस्ट' आदि अपशब्द कह कर चुप कराने की कोशिश करते हैं।

मगर, भय, लोभ, अज्ञान या मूढ़ता के वशीभूत होकर राजनीतिक निर्णय लेना सामान्य जन-गण के लिए कितना महंगा पड़ता है, यह भारत के लोग निकट इतिहास म. कई बार देख चुके हैं। उसकी और पुनरावृत्ति न हो, इसके लिए आवश्यक है कि हम डॉ. अंबेदकर की विद्वत-शैली और राजनीतिक खुलेपन के साथ कठिन प्रश्नों की चर्चा कर.। यहाँ यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इन गुणों के कारण मुस्लिम नेताओं ने भी डॉ. अंबेदकर की कद्र की थी। उनकी इस पुस्तक पर तथ्यों की दृष्टि से किसी ने उँगली नहीं उठाई, क्योंकि इसम. लिखी एक-एक बात प्रामाणिक है।